# योग दर्शन और शिक्षा

**दिनेश कुमार गुप्ता** – शोधार्थी, शिक्षा विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर।

**सारांश:** योग मानव जीवन को सप्रयोजन मानता है। उसकी दृष्टि से मानव जीवन का मुख्य प्रयोजन मुक्ति है। इस मुक्ति के लिए योग चित्तवृत्तियों का निरोध आवश्यक मानता है और चित्तवृत्तियों के निरोध के लिए अष्टांग योग आवश्यक मानता है। पर यह सब कार्य इस शरीर द्वारा ही सम्भव है। अतः वह मनुष्य के शारीरिक विकास पर सर्वप्रथम बल देता है। यह चित्त को मन, अंहकार और बुद्धि का योग मानता है। अतः शरीर के विकास के बाद उसके मन, अहंकार व बुद्धि की बात करता है। शिक्षा की पाठ्यचर्या बालक के विकास के क्रम के अनुकूल होनी चाहिए। यह सीखने की सर्वोत्तम विधि योग विधि को मानते हुए योग को ज्ञान प्राप्त करने का सर्वोत्तम साधन मानता है।

**कुंजी शब्द:** योग, जीवन, विकास, शिक्षा, ज्ञान.

## प्रस्तावना :

योग दर्शन भारत की अपनी विशेषता है। इस दर्शन की सबसे बडी देन योग प्रक्रिया को वैज्ञानिक एवं आध्यात्मिक रूप प्रदान करना है। वेद, ब्राह्मण और उपनिषदों में योग प्रक्रिया का विशिष्ट वर्णन है। जैन व बौद्ध साहित्य में भी योग प्रक्रिया का विवेचन किया गया है। परन्तु योग को एक स्वतन्त्र दर्शन के रूप में प्रतिष्ठित करने का श्रेय महर्षि पतंजलि को जाता है। उनका **'योग सूत्र'** योग दर्शन का सर्वप्रथम प्रामाणिक ग्रन्थ है। योग का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ है– समाधि। पतंजलि के अनुसार योग का अर्थ है – चित्तवृत्तियों का निरोध। चित्तवृत्तियों के निरोध से तात्पर्य चित्तवृत्तियों को साँसरिक भोग से हटाकर ईश्वर की ओर लगाने से है। इस प्रकार योग का अर्थ है आत्मा परमात्मा का योग। ''**योगदर्शन भारतीय दर्शन की वह विचारधारा है जो इस ब्रह्मण्ड को ईश्वर द्वारा प्रकृति एवं पुरूष के योग से निर्मित मानती है और यह मानती है कि प्रकृति, पुरूष और ईश्वर तीनों अनादि और अनन्त हैं। यह ईश्वर को कर्मफल के योग से मुक्त और आत्मा को कर्मफल का भोक्ता मानती है और यह प्रतिपादन करती है कि मनुष्य जीवन का अन्तिम उद्देश्य परमानन्दानुभूति है जिसे अष्टांग योग साधना द्वारा प्राप्त किया जा सकता है।**'' (लाल एवं पलोड़, 2010, पृ. 121)

## शिक्षा का अर्थ :

योग दर्शन के चार पाद हैं– समाधिपाद, साधनापाद, विभूतिपाद, कैवल्यपाद। ये चारों पाद एक दूसरे से इस प्रकार जोड़े गये हैं कि जो एकमात्र या अन्तिम सत्य की प्राप्ति कराते हैं। इनमें शिक्षा की प्रक्रिया निहित है, इस दृष्टि से शिक्षा को अन्तिम सत्य कैवल्य को प्राप्त करने की प्रक्रिया जाना जा सकता है। कैवल्य का अर्थ यथार्थ ज्ञान से होता है। पतंजलि के अनुसार शिक्षा एक दार्शनिक मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है। पतंजलि योग की परिभाषा देते हुए कहते हैं – **'योगश्चित्तवृत्ति निरोध'** इस प्रकार आत्मनिरोध का आत्मनियन्त्रण द्वारा आध्यात्मिक या सांसारिक विकास की प्रक्रिया को शिक्षा कहा जा सकता है। योग दर्शन के अनुसार शिक्षा का कार्य व्यक्ति से प्रकृति, पुरूष और ईश्वर के सम्बन्ध का ज्ञान प्रदान करके उसे उस ईश्वर तत्व की ओर आकर्षित करना है जिससे वह अपने जीवन में मुक्ति प्रदान कर सके और आनन्द की अनुभूति कर सके। कठोपनिषद् में योग को इस प्रकार परिभाषित किया गया है – **जब चेतना निश्चेष्ट हो जाती है, मन शान्त हो जाता है, जब बुद्धि स्थिर हो जाती है तब ज्ञान उसे सर्वोच्च पद प्राप्त हुआ मानताहै, चेतना और मन के इस दृढ निग्रह को ही योग की संज्ञा दी गई और जो इसे प्राप्त करता है, वह बन्धन मुक्त हो जाता है।**'' (त्यागी, 2015, पृ. 212)

**शिक्षा के लक्ष्य –** योगदर्शन का उद्देश्य है कि मनुष्य पंचविघ्न क्लेशों और नानाविध कर्मफल से विमुक्त होकर मोक्ष या कैवल्य प्राप्त करें। योग दर्शन के अनुसार कैवल्य अवस्था निषेधात्मक नहीं है वरन् पुरूष का वह नित्य जीवन है जो शुद्ध स्वरूप है, इसी लक्ष्य को शिक्षा का लक्ष्य माना गया है। लौकिक दृष्टि से उद्देश्यों का निरूपण प्रकृति तथा उसके तत्वों के विकास के सन्दर्भ में किया जा सकता है, बालक का शरीर ज्ञानेन्द्रियों व कर्मेन्द्रियों की तन्मात्राओं की बनी हुई संरचना है। उसके शारीरिक विकास के अन्तर्गत उसकी कर्मेन्द्रियाँ सक्षम तथा क्रियाशील होनी चाहिए।

योग शिक्षा दर्शन में शिक्षा के लक्ष्य इस प्रकार हैं–

(1) योग साधना के लिए नैतिक आचरणों का विकास करना।

(2) विद्यार्थियों को मन, वचन तथा कर्म के संयम का प्रशिक्षण देना।

(3) पतंजलि के पाँच नियमों का अनुसरण करना – सोच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय तथा ईश्वर में विश्वास।

(4) विद्यार्थियों द्वारा ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करना।

(5) अष्टांग योग का अभ्यास तथा आत्म बोध एवं संयम का विकास करना।

(6) नैतिक गुणों तथा लोक कल्याण की भावनाओं का विकास करना।

(7) अच्छे संस्कारों का निर्माण करना तथा सर्वांगीण विकास करना।

**शिक्षा का पाठ्यक्रम :**

योग दर्शन के पाठ्यक्रम में अष्टांग योग को शामिल किया गया है। योग के पाँचों नियमों के पालन को भी पाठ्यवस्तु में सम्मिलित किया है। अन्तकरणः के विकास के लिए योग साधना ही एक मात्र साधन है। इसलिए पाठ्यवस्तु में चित्तवृत्ति निरोध को आधार बनाया जाए। पतंजलि योग सूत्र सम्पूर्ण जीवन बिताने से लेकर कैवल्य प्राप्ति तक व्यवस्था बताता है। ऐसी स्थिति में 'योगश्चित्तवृत्ति निरोध' में जो संकेत मिलते हैं उनसे शिक्षा की पाठ्यचर्या भी ज्ञात होती है। पतंजलि के उपदेश से ज्ञात होता है कि मानव को धर्म एवं अध्यात्म का ज्ञान देने के लिए उन्होंने सूत्रों की रचना की। इस आधार पर शिक्षा के पाठ्यक्रम में धर्मशास्त्र, दर्शनशास्त्र, नीतिशास्त्र, मनोविज्ञान, शरीर विज्ञान तथा योगाभ्यास और अन्य शारीरिक क्रियाएँ रखी गई हैं। लोक कल्याण की भावना के विकास के उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए पाठ्यक्रम में समाजशास्त्र, नैतिक शास्त्र और सामाजिक जीवन की क्रियाओं को सम्मिलित किया जाना चाहिए। योग दर्शन के महाभाष्य के आधार पर भाषा, वेद, वेदांग, पुराण, वैद्यकशास्त्र, न्यायशास्त्र, ज्यामिति, इतिहास आदि को भी पाठ्यक्रम का अंग बनाया जाना चाहिए।

## योग दर्शन और शिक्षण विधियाँ :

बालक की शिक्षा का मूल आधार प्रत्यक्ष ज्ञान है। बाद में जो ज्ञान भाषा के आधार पर प्राप्त किया जाता है, उसके लिए जिन संज्ञाओं, क्रियाओं, विशेषणों आदि का प्रयोग किया जाता है, वे सब आरम्भ में प्रत्यक्षविधि द्वारा निर्मित होते हैं, आरम्भिक कक्षाओं में सभी विषयों के अध्यापन के लिए प्रत्यक्षविधि का प्रयोग किया जाना चाहिए। योग दर्शन में अनुमान विधि के प्रयोग की बात कही गई है, अनुमान विधि का प्रयोग किसी न किसी रूप में सब विधियों के साथ होता है। इस विधि में ज्ञात विषय के आधार पर किसी हेतु के माध्यम से ज्ञेय विषय का अनुमान लगाया जाता है। योग दर्शन में शब्द विधि का अर्थ है– आप्त मनुष्यों के मुख से सुनकर अथवा ग्रन्थों का अध्ययन करके ज्ञान प्राप्त करना। विद्यार्थी इस प्रकार प्राप्त ज्ञान को अपने प्रत्यक्ष ज्ञान एवं तर्क की कसौटी पर कस कर ही ग्रहण करें। योग विधि वह विधि है जिसमें आत्मा ज्ञान को सीधे प्राप्त करती है। योग की स्थिति में ज्ञेय और ज्ञाता में भेद नहीं रह जाता परन्तु इस विधि से सामान्य विद्यार्थी ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकते, इस विधि का प्रयोग योगी ही कर सकते हैं।

## योग दर्शन एवं अनुशासन :

अनुशासन को योग शिक्षा का एक आवश्यक तत्व माना गया है, कहा गया है– **'योगेन चित्तस्य पदेन वाचां अनुशासनम्'।** शिक्षा का उद्देश्य अविद्या का नाश व विवेक ज्ञान की प्राप्ति करना है, इसके लिए अनुशासन की आवश्यकता होती है। ज्ञान प्राप्ति के लिए आवश्यक है कि व्यक्ति का चित्त निर्मल व स्थिर हो क्योंकि शुद्ध हृदय और शान्त मन से ही साधना सम्भव है। योग दर्शन दोनों प्रकार के अनुशासन आत्मानुशासन और लौकिकानुशासन पर बल देता है। चित्त व वाणी का अनुशासन आन्तरिक अनुशासन है व व्यवहारों पर नियन्त्रण लौकिकानुशासन है। अनुशासन के लिए पतंजलि ने अष्टांग योग का साधन बताया है। अष्टांग योग में आठ अंग है– यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारण, ध्यान, समाधि। अनुशासन के लिए अष्टांग योग मार्ग को अपनाना ही अनुशासन का प्रतीक माना गया है।

## योग दर्शन और शिक्षक :

योगदर्शन सैद्धान्तिक की अपेक्षा क्रियात्मक अधिक है। शिक्षक का कर्तव्य है कि पहले विषय वस्तु का ज्ञान व्याख्यान तथा प्रवचन विधि द्वारा प्रदान करे। गुरू द्वारा शिष्य को मन, वचन तथा कर्म का संयम सिखाना चाहिए, जिससे शिष्य अनुशासित रह सके। शिष्यों में गुरू द्वारा ईश्वर के प्रति विश्वास, श्रद्धा तथा समर्पण का भाव विकसित करना चाहिए।

गुरू को ब्रह्मनिष्ठ होना चाहिए अर्थात् जो योग के द्वारा समाधि की ऊँची भूमिका में पहुँचकर ब्रह्म का साक्षात्कार कर चुका है। गुरू तो ऐसा होना चाहिए जो योगाभ्यास में रत हो, वह साधक तथा विद्यार्थी को दूर तक ले जा सके तथा ज्ञान का द्वार खोल सके। शिक्षक योग के रहस्यों का ज्ञाता हो। गुरू शिष्य की योग्यता को पहचाने, उसका कर्तव्य शिष्य के सारे जीवन को सुधारना है, शिष्य को ऐसा बना देना है कि उसमें कोई कमी न रहे।

## योग दर्शन एवं विद्यार्थी :

योग दर्शन के अनुसार विद्यार्थी योग साधक होता है और वह योग का अभ्यास करता हैं। उसे चित्त की पाँचों अवस्थाओं– क्षिप्तावस्था, मूढ़ावस्था, विक्षिप्तावस्था, एकाग्रावस्था और निरूद्धावस्था व पाँचों प्रकार की चित्तवृत्तियों– प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा, स्मृति को समझना चाहिए। उसे संप्रज्ञाता, स्वाध्यायी, ब्रह्मचारी और कर्तव्यनिष्ठ होना चाहिए, उसे सात्विक और सुसंस्कारयुक्त होना चाहिए। उसे नैतिक गुणों व सदाचरण से युक्त होना चाहिए, उसका चरित्र उत्तम तथा किसी वस्तु या व्यक्ति के प्रति आसक्ति और तृष्णा नहीं होनी चाहिए। शिक्षार्थियों को अष्टांग योग मार्ग का उपदेश देकर उनका अभ्यास कराया जाना चाहिए। विद्यार्थियों में ईश्वर के प्रति विश्वास, श्रद्धा तथा समर्पण का भाव विकसित करना चाहिए।

**विद्यालय–** योग दर्शन के अनुसार गुरू के निवास स्थान को ही विद्यालय माना जाता है। योगाभ्यासी गुरू शान्त, एकान्त बाधारहित स्थान पर निवास करते थे जो सामान्यतः प्रकृति की गोद में अपना आवास बनाते थे। यह भारत की प्राचीन परम्परा रही है। योग दर्शन विद्यालयों को योग क्रिया के प्रशिक्षण केन्द्रों के रूप में विकसित करने पर बल देता है।

## उपसंहार :

योग के अनुशासन, शिक्षक, शिक्षार्थी सम्बन्धी विचार अति प्राचीन होते हुए भी अर्वाचीन हैं। योग ने अनुशासन के जिन आठ पदों की चर्चा की है उनकी उपयोगिता किसी न किसी रूप में सभी स्वीकार करते हैं। यम, नियम, आसन, प्राणायाम को यदि हम योग द्वारा प्रतिपादित रूप में स्वीकार करें और प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि को मन की एकाग्रता के रूप में स्वीकार करें तो यह बात भौतिकवादी और अध्यात्मवादी सभी को स्वीकार होगी। आज के शिक्षक और विद्यार्थी यदि योग द्वारा निर्दिष्ट मार्ग का अनुसरण करें तो शिक्षा जगत् की समस्त बुराइयाँ देखते ही देखते समाप्त हो जाएँ। हमें योग विज्ञान को समझने और शिक्षा के क्षेत्र में उसका प्रयोग करने का प्रयत्न करना चाहिए।

## सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :


1. चौबे, डॉ. सरयू प्रसाद तथा चौबे, डॉ. अखिलेश (2005) ''शिक्षा के दार्शनिक और समाज शास्त्रीय आधार'' इन्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस, मेरठ, पृ. 426–430
2. लाल, प्रो. रमन बिहारी व पलोड़, सुनीता (2010) ''शिक्षा के दार्शनिक और समाज शास्त्रीय आधार'', आर. लाल बुक डिपो, मेरठ, पृ. 119–128
3. ओड, एल.के. (2004) ''शिक्षा की दार्शनिक पृष्ठ भूमि'', राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी,, जयपुर, पृ. 183
4. शर्मा, डॉ. आर.ए. (2010) ''शिक्षा के दार्शनिक एवं सामाजिक मूल आधार,'' आर. लाल बुक डिपो, मेरठ, पृ. 319–325
5. सक्सेना, डॉ. सरोज (2004) ''शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय आधार'', सहित्य प्रकाशन, आगरा, पृ. 103–110
6. त्यागी, गुरसरनदास (2015) ''शिक्षा के सिद्धान्त'', अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा, पृ. 211–236